प्रकाशपुंज

महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले

नमुना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

प्रकाशपुंज

महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले

डॉ0 बालकेश्वर
एसोसिएट प्रोफेसर- इतिहास
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर,
संत रविदास नगर भदोही, उत्तर प्रदेश

नमूना SAMPLE

अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस
दिल्ली (भारत)

द्वारा प्रकाशित



अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस

Publisher, Distributor, Exporter having an Online Bookstore

एल-9ए, प्रथम तल, गली न0 42,
सादतपुर एक्सटेंसन, दिल्ली-110094 (भारत)
Phone : 9968628081, 9555149955, 9013387535
E-mail : akhandpublishinghouse@gmail.com
akhandpublishing@yahoo.com
Website : www.akhandbooks.com

प्रकाशपुंज
महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले

संस्करण : 2019
© लेखक
ISBN: 978-93-88998-83-3

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इलेक्ट्रॉनिक या किसी अन्य माध्यम द्वारा पुनः प्राप्ति समेत किसी भी रूप में प्रतिलिपिकृत, अनुवादित, संगृहीत नहीं किया जा सकता है और न ही किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम द्वारा इसे प्रसारित किया जा सकता है।

इस पुस्तक में लेखक द्वारा व्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत हैं जिसका प्रकाशक से कोई संबंध नहीं है।

भारत में प्रकाशित

झपसू यादव द्वारा 'अखण्ड पब्लिशिंग हाउस' के लिए प्रकाशित। वी.एम. ग्राफिक, दिल्ली द्वारा कवर डिजाइन व शब्द संयोजन तथा वी.एम. ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली से मुद्रित।

FREE SAMPLE

'kHkPNk

भारतीय संस्कृति 'अनेकता में एकता' के मूलतत्व पर विश्वास रख कर प्रवाहमान रही है। हमारे देश में परस्पर विरोधी विचारों में समन्वय कर पाना इसकी अद्वितीय विशेषता भी रही है। यही वजह है कि प्राचीन ब्राह्मण एवं श्रमण परम्परा आज भी विद्यमान है, दोनों में परस्पर अन्तर्द्वन्द्व आज भी दिखायी देता है। इन सब के बावजूद इन दोनों के बीच बहुत कुछ आदान–प्रदान हो चुका है। मक्खलि गोशाल से आरम्भ विचारधारा, केश कम्बलि, बुद्ध, कबीर, फुले, पेरियार आदि में पुष्पित पल्लवित होते हुए अम्बेडकर तक पहुँची है। आधुनिक युग में यह भी अन्तर्द्वन्द्व दिखता है कि शोषित समाज के लोगों का कैसे पुनरूद्धार किया जाय? 19वीं सदी के समाज सुधारकों ने इस दिशा में सार्थक प्रयास की, इस दिशा में 'प्रकाशपुंज महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले' ने जो कार्य किया वह अविस्मरणीय है।

महात्मा ज्योतिबा फुले आधुनिक युग के सामाजिक क्रांति के प्रस्तोता है। उन्होंने वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था तथा स्त्री उत्थान के लिए न केवल मौलिक विचार दिया अपितु उसे क्रिया रूप में करके दिखाया। 19वीं सदी राष्ट्रीय मुक्ति के लिए वेद एवं ब्रह्म की अवधारणा में कसमसा रही थी। पुनुरूत्थान की चकाचौंध में सुधार की लौ मद्धिम हो जानी थी, किन्तु महात्मा ज्योतिबा फुले ने हार नहीं मानी। जिसका परिणाम है कि आज समाज का बड़ा वर्ग उनके विचारधारा से प्रभावित होकर समाज परिवर्तन की दिशा को गति दे रहा है। किसान एवं मजदूर चेतना पर आधारित प्रस्तुत पुस्तक 'किसान का कोड़ा' में किसानों की दुर्दशा का मर्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्हें शूद्रातिशूद्रों एवं स्त्रियों को शिक्षित करके ऊपर उठाने की प्रेरणा थामस पेन की

पुस्तक 'राइट्स ऑफ मैन' से मिली थी। इसलिए धर्म के नाम पर हो रही लूट से बहुजन समाज और स्त्रियों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। उनका सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की वर्तमान अवधारणा से सीधा विरोध था, इसलिए उन्होंने सत्य को ही धर्म माना और 'सार्वजनिक सत्य धर्म' पुस्तक की रचना की। साथ ही सत्य के स्वरूप के रूप में 'निर्मिक' की अवधारणा प्रस्तुत किया। सत्य के महत्व को महात्मा गांधी ने भी स्वीकार किया। महात्मा ज्योतिबा फुले स्त्रियों एवं शूद्रातिशूद्रों के स्तर को ऊपर उठाने के लिए अपनी विचारधारा का प्रचार–प्रसार अनेक पुस्तकों की रचना कर तथा सत्य शोधक समाज नामक संगठन बना कर किया।

डॉ0 बालकेश्वर की पुस्तक 'प्रकाशपुंज महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फूले' इस महान चिन्तक के विविध पक्षों को रेखाकिंत करती है। महाराष्ट्र के स्थानीय परिस्थितियों से लड़ता हुआ एक चिन्तक कैसे अखिल भारतीय सामाजिक परिवर्तन का निर्भिक वाचक बन जाता है। इस पुस्तक को पढ़ कर आसानी से समझा जा सकता है। डॉ0 बालकेश्वर जी कि यह प्रस्तुति निश्चय ही समाजोपयोगी सिद्ध होगी।

तिथि (दिनांक)
पूर्णिमा (रक्षाबंधन, स्वतंत्रता दिवस)
15 अगस्त 2019

ikQlj inhi ukjk;.k Mkxj
प्राचार्य
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, ज्ञानपुर
संत रविदास नगर भदोही।

In'k

भारतीय सामाजिक क्रांति के प्रणेता महात्मा ज्योतिबा फुले पर डॉ0 बालकेश्वर द्वारा लिखित पुस्तक पर मुझे जब प्राक्कथन लिखने का आग्रह आया तो मैं गर्वानुभूति महसूस किए बिना न रह सका। शूद्रातिशूद्र जैसा कि डॉ0 बालकेश्वर ने इस पुस्तक में निरूपण किया है कि स्थिति को समझने और समझाने की दिशा में इतिहासकारों ने कोई यथेष्ट प्रयास नहीं किया है इस बहुत बड़े अभाव को पूर्ण करने की दृष्टि से यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। 19वीं सदी में स्त्री शिक्षा की दशा भी इस पुस्तक से स्पष्टतः निरूपित होते हुए, इस कटु वस्तुस्थिति की पुष्टि करती है कि स्त्रियों में न केवल अशिक्षा थी, बल्कि उन्हें तरह–तरह से शोषण एवं कुरीतियों का शिकार होना पड़ता था। आवश्यकता आविष्कार की जननी है इसे चरितार्थ करते हुए महात्मा ज्योतिबा फुले ने सामाजिक आंदोलन के उस कड़ी का नेतृत्व किया जिसका सम्बंध शोषित बहुजनों से था। महात्मा फुले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज तथा पाठशालाएं शुद्रातिशूद्रों तथा स्त्रियों के लिए समता एवं सम्मान के नवयुग की उद्घोषक बनी। गुलामगिरी तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से उन्होंने धार्मिक शोषण की शिकार मानवता को बुद्धिवाद का संदेश दिया। किसी भी कृति का आकलन जिसका सम्बन्ध इतिहास से है केवल अतीत के वर्णन में ही नहीं निहित होता है अपितु इस तथ्य में होता है कि वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता क्या है? तथा उससे कितना ज्ञान रूपी प्रकाश प्रस्फुटित होता है? इस तरह के अनेक मानको पर यह पुस्तक खरी उतरेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पुस्तक की विषयवस्तु का सम्बंध जिस समाज सुधारक, विचारक एवं जन नायक महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले (1827–1890 ई0) से है,

SAMPLE

उनकी प्रासंगिकता तब तक रहेगी जब तक समाज में पूर्ण समता व्याप्त नहीं हो जाती तथा जाति, धर्म के नाम पर अपमान एवं शोषण समाप्त नहीं हो जाता। इस महात्मा को निम्न जातियों के उद्धारक के रूप में याद किया जाता रहेगा।

डॉ0 बालकेश्वर की यह पुस्तक विद्वत जगत में सादर स्वीकृत होगी ऐसी मेरी अवधारणा एवं शुभकामना है। मैं उन्हें इसकी बधाई देता हूँ। साथ ही पुस्तक का शीर्षक ''प्रकाशपुंज महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले'' अत्यंत आकर्षक हैं, जो डॉ0 बालकेश्वर के सकारात्मक सोच को अभिव्यक्त करता है। निश्चित रूप से यह पुस्तक महात्मा फुले के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की एक ऐतिहासिक एवं सामाजिक दस्तावेज है।

तिथि (दिनांक)
पूर्णिमा (रक्षाबंधन, स्वतंत्रता दिवस)
15 अगस्त 2019

ikQlj iUukyky fo'odekZ
भूतपूर्व विभागाध्यक्ष
मध्य एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

नमूना • SAMPLE

ikDdFku

यह निर्विवाद रूप से स्थापित हो चुका है कि भारत के सामाजिक क्रान्तिकारियों में ज्योतिबा फुले का प्रमुख स्थान रहा है। ज्योतिबा फुले का कार्य अधिक महत्वपूर्ण इसलिए है कि उन्होंने शूद्रातिशूद्रों तथा स्त्रियों के उत्थान के लिए शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण शस्त्र का प्रयोग किया। शिक्षा के लिए उन्होंने अनेक विद्यालयों की स्थापना की। उनका विचार था कि शिक्षा के अभाव में परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन नहीं हो सकता।

ज्योतिबा फुले भारत में शूद्रातिशूद्रों एवं स्त्रियों के उत्थान के लिए जिस समय संघर्ष कर रहे थे, उस समय साम्यवादी व्यवस्था के मार्गदर्शक कार्लमार्क्स दुनिया के मजदूरों को एक होने की आवाज बुलन्द कर रहे थे। कार्लमार्क्स ने सर्वहारा वर्ग के हित के लिए जो कार्य किया, ठीक उसी प्रकार ज्योतिबा फुले ने भारत में दलित वर्ग के हित के लिए कार्य किया। ज्योतिबा फुले का व्यक्तित्व पूरी तरह से मानवता से परिपूर्ण है। इसलिए वे मानवमात्र के बीच विषमता को समाप्त करने पर बल देते रहे। प्रस्तुत पुस्तक का मूल उद्देश्य ज्योतिबा फुले के सामाजिक ऐतिहासिक महत्व को समझना है। इसलिए पुस्तक में उनके व्यक्तित्व को उजागर करने वाले महत्वपूर्ण सामाजिक बिन्दुओं का ऐतिहासिक परिपेक्ष में विश्लेषण किया गया है।

विषय की स्पष्ट एवं वैज्ञानिक व्याख्या के लिए पुस्तक को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। साथ ही स्मरणीय है कि अध्यायों का विभाजन उनके सामाजिक कार्यों के आधार पर किया गया है। जिसे हमने अध्ययन के लिए सुबोध एवं सुविधाजनक समझा है।

SAMPLE

प्रथम अध्याय ''19वीं सदी में महाराष्ट्र का स्वरूप'' में ज्योतिबा फुले के समय की महाराष्ट्र की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक इत्यादि बिन्दुओं पर विचार किया गया है, जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ा है।

द्वितीय अध्याय ''महात्मा ज्योतिबा फुले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज की रूपरेखा'' में उनकी पृष्ठभूमि एवं जीवन चरित्र का संक्षिप्त वर्णन है। इसमें सत्यशोधक समाज का स्वरूप एवं अभिप्राय, कार्य पद्धति, विस्तार, सैद्धान्तिक पक्ष तथा विवाह पद्धति के तरीकों का विश्लेषण किया गया है। सत्यशोधक समाज का महाराष्ट्र के समाज पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका भी आलोचनात्मक परीक्षण हुआ है।

तृतीय अध्याय 'महात्मा ज्योतिबा फुले का सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण' में वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था तथा समाज में प्रचलित बुराइयों के विरूद्ध उनके दृष्टिकोण को रेखांकित किया गया है। ज्योतिबा फुले के धर्म विषयक अवधारणा का मूल निचोड़ 'सार्वजनिक सत्यधर्म' के 33–नियमों को उद्घृत किया गया है। इसमें ज्योतिबा फुले के ईश्वर सम्बन्धी अवधारणा तथा उनकी 'निर्मिक' की कल्पना के विचार को भी स्पष्ट किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'महात्मा ज्योतिबा फुले की राजनीतिक विचारधारा' में 19वीं शताब्दी के भारत के राजनैतिक दशा का विश्लेषण किया गया है तथा सन 1857 के विद्रोह के सम्बन्ध में ज्योतिबा फुले के विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन हुआ है। इसके साथ ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्बन्ध में ज्योतिबा फुले की विचारधारा के ऐतिहासिक आधार पर तार्किक विश्लेषण किया गया है और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में उनकी अवधारणा को भी स्पष्ट किया गया है।

पंचम अध्याय 'महात्मा ज्योतिबा फुले और स्त्री शिक्षा' में ज्योतिबा फुले के सबसे प्रिय विषय शिक्षा के सम्बन्ध में उनके द्वारा व्यक्त किये गये विचार तथा कई विद्यालयों की स्थापना, उनकी कार्य पद्धति तथा परीक्षा–प्रणाली के साथ–साथ प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के उनके विचारों की गहन छानबीन की गयी है।

षष्ठम अध्याय 'महाराष्ट्र के सामाजिक आन्दोलन में महात्मा ज्योतिबा फुले का योगदान एवं प्रभाव' में महाराष्ट्र के सामाजिक आन्दोलन में ज्योतिबा फुले के साहित्यिक, शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक योगदान को विश्लेषित किया गया है। उनके योगदान के कारण कालान्तर में महाराष्ट्र में पड़ने वाले प्रभाव तथा आज के सन्दर्भ में सम्पूर्ण भारत के सामाजिक नवजागरण में उनके प्रभाव की महत्ता को विश्लेषित किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक का सप्तम् अध्याय 'महात्मा फुले के विचारों का मूल्यांकन' है। जिसमें ज्योतिबा फुले के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आलोचनात्मक एवं तार्किक परीक्षण किया गया है। आज के सन्दर्भ में ज्योतिबा फुले की ऐतिहासिक प्रासंगिकता एवं उनका इतिहास में स्थान तथा राजा राम मोहन राय और ज्योतिबा फुले के सामाजिक सुधार आन्दोलन का तुलनात्मक ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है। साथ ही साथ महात्मा गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी के विचारों का तुलनात्मक परीक्षण किया गया है।

इस प्रकार से ज्योतिबा फुले का भारत के सामाजिक आन्दोलन में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन पर अनेक प्रकार की पुस्तकें लिखी गई है। हमारा उद्देश्य उनकी ऐतिहासिक प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है। ज्योतिबा फुले का भारत के सामाजिक इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जिससे भारत की बहुसंख्यक आबादी परिचित नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक में हमारा ध्येय है कि ज्योतिबा फुले के भारतीय पुनर्जागरण के योगदान तथा महत्व को समझाया जाय।

प्रस्तुत पुस्तक को वर्तमान स्वरूप दिलाने का सम्पूर्ण श्रेय मेरे गुरुवर्य डॉ0 विजय प्रताप सिंह को है। यह तो उन्हीं का प्रसाद है। मैं अपने विद्वान इतिहास विषय के मर्मज्ञ डॉ0 विजय प्रताप सिंह, सेवानिवृत्त, प्राचार्य, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर, संत रविदास नगर भदोही के रह चुके है। साथ ही इस महाविद्यालय के वर्तमान प्राचार्य डॉ. पी. एन. डोंगरे सर का भी विशेष आभारी हूँ। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। मैं अपनी गुरूमाता श्रीमती कौमुदी सिंह के प्रति भी आभारी हूँ। जिनके

आशीर्वाद एवं वात्सल्यपूर्ण प्रेम से यह कार्य पूरा हो सका। इस कार्य में मेरे मित्र डॉ0 रवि कुमार मिश्रा और डॉ0 सत्य नारायण वर्मा का अविस्मरणीय योगदान रहा है।

अन्त में मैं अपनी परम पूज्यनीय माता श्रीमती फूलकुमारी देवी और पिता श्री विश्राम के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे शिक्षा जगत की इस ऊँचाई तक पहुँचाया। साथ ही मेरे सास–ससुर श्रीमती शकुन्तला देवी एवं श्री राम लखन प्रजापति का विशेष आभार व्यक्त करता हूँ। धर्मपत्नी श्रीमती कुमुद प्रजापति ने इस कार्य को पूर्ण करने में अविस्मरणीय योगदान, निरन्तर सहयोग एवं प्रोत्साहन दिया। मैं अपने अग्रज श्री सुरेन्द्र प्रसाद तथा अनुज श्री मंगला प्रसाद, श्री रामकेवल प्रसाद सिंह, श्री राजेश प्रसाद सिंह को साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने शोध–कार्य पूर्ण करने के लिए मुझे अनवरत सहयोग प्रदान किया। मेरी बड़ी पुत्री अलीशा दक्ष और भांजी राधिका देवी का भी अविस्मरणीय योगदान रहा। मेरे अपने सम्बन्धी श्री सुनील कुमार तथा श्रीमती लीना, और अनिल पंडित एवं सुनीता गुप्ता को भी मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने मेरा अनवरत उत्साहवर्धन किया। साथ ही अपने प्रिय सम्बंधी श्रीमती नीलम को नहीं भूल सकता जिन्होंने अपना मूल्यवान समय देकर इस पुस्तक को यह स्वरूप प्रदान किया। मेरी नवजात पुत्री नव्या का आगमन इस धरा पर 18 जून 2019 को हुआ है। यह पुत्री मेरे घर की प्रकाशपुंज है। क्योंकि इसके आगमन के साथ ही यह पुस्तक भी प्रकाशित हो रही है। यह मेरे लिए गौरव की बात है।

इस पुस्तक हेतु महात्मा ज्योतिबा फुले संग्रहालय पुणे, महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी मुम्बई, केन्द्रीय ग्रन्थालय पुणे विश्वविद्यालय पुणे, केन्द्रीय ग्रन्थालय नागपुर विश्वविद्यालय नागपुर, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सायाजीराव गायकवाड़ केन्द्रीय ग्रन्थालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, भगवान दास केन्द्रीय ग्रन्थालय महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, केन्द्रीय ग्रन्थालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, पं0 गोविन्द बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान इलाहाबाद, ईश्वरी

प्रसाद इतिहास संस्थान इलाहाबाद, इलाहाबाद म्यूजियम लाइब्रेरी इलाहाबाद, तथागत लाइब्रेरी इलाहाबाद, पुस्तकालय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर, सन्त रविदास नगर भदोही, तथा पुस्तकालय डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय भदोही संत रविदास नगर भदोही के सहयोग के बिना यह कार्य पूर्ण कर पाना असम्भव था। अतः यहाँ के सम्बन्धित अधिकारियों और कर्मचारियों को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने सराहनीय योगदान दिया। साथ ही मैं उनका भी आभारी हूँ, जिन्होंने कार्य को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग व सुझाव दिया।

श्रमसाध्य परिश्रम एवं समुचित प्रयास के पश्चात् भी पुस्तक में त्रुटियाँ हो सकती हैं। यह कहने का दुस्साहस करना कि यह पुस्तक अपने में पूर्ण है, सर्वथा अनुचित होगा।

अन्त में श्री वीरेन्द्र कुमार यादव का मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने अपने व्यस्ततम् समय से कुछ समय निकाल कर कुशलतापूर्वक पुस्तक को टंकित कर अन्तिम स्वरूप देने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

M,0 ckyd'oj

एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास

काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

ज्ञानपुर, भदोही, उ0प्र0।

नमूना • SAMPLE

iLrkouk

भारत में सामाजिक सुधार आन्दोलन की दृष्टि से 19वीं सदी का प्रमुख स्थान है। समाज सुधार की दिशा में जो कार्य इससे पूर्व नहीं हो पाया था वह इस समय पूरा हुआ। 19वीं सदी में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस समय भारत में बौद्धिक जागरण हो रहा था तथा परम्परागत व्यवस्था और पुरानी मान्यताएं ध्वस्त हो रही थी और नवीन विचार अपना स्थान ग्रहण कर रहे थे। इन सभी परिवर्तनों के लिए उस समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ जिम्मेदार थी, क्योंकि भारत में ब्रिटिश सत्ता की जड़ें मजबूत हो चुकी थी।

19वीं सदी में ही एक निर्भय समाज सुधारक का जन्म महाराष्ट्र की धरती पर हुआ। जिन्होंने ब्राह्मणवादी व्यवस्था की आलोचना के साथ–साथ ब्रिटिश शासन के समय हो रहे शोषणकारी प्रवृत्तियों की भी आलोचना की। प्रकाशपुंज महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले पर पुस्तक लिखने का मूल उद्देश्य यह है कि उनके ऐतिहासिक पक्षों का विश्लेषण किया जाए। सामाजिक दलित इतिहास में उनका जो अमूल्य योगदान रहा है, उसको उद्घृत किया जाना आवश्यक है। ज्योतिबा फुले के सामाजिक आन्दोलन का प्रभाव महाराष्ट्र के साथ–साथ सम्पूर्ण भारत पर पड़ा। आज पूरे भारतवर्ष में उनके द्वारा किए गए कार्यों एवं उपलब्धियों की प्रशंसा हो रही है। ज्योतिबा फुले ने शोषण विमुक्त समतावादी समाज को स्थापित करने के लिए शिक्षा पर बल दिया।

प्रस्तुत पुस्तक को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। इन सात अध्यायों के माध्यम से उनके व्यक्तित्व के ऐतिहासिक परिपेक्ष को

SAMPLE

समझाने का प्रयास किया गया है तथा भारतीय इतिहास में एक सत्यशोधक की भाँति उनकी महत्ता जो इतिहास निर्माण की प्रक्रिया में एक आवश्यक तत्व के रूप में है, उसको भी स्पष्ट करने का प्रयास हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा उन परिस्थितियों को सर्वप्रथम बताने का प्रयास हुआ है, जिसका प्रभाव ज्योतिबा फुले के व्यक्तित्व पर पड़ा। इसलिए 19वीं सदी के महाराष्ट्र की भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक पहलुओं का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। इस समय महाराष्ट्र का शासनतन्त्र पेशवाओं के प्रशासनिक संरचना पर आधारित था तथा उस समय इस प्रशासनिक व्यवस्था के तहत समाज पर ब्राह्मणवाद का वर्चस्व था। जिसको ब्रिटिश शासनतन्त्र भी समाप्त नहीं कर पाया था। राजनीतिक रूप से सत्ता का हस्तांतरण भले ही पेशवाओं से ब्रिटिशों के हाथ में आया हो, परन्तु मूलभूत ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

पेशवाओं के समय महाराष्ट्र की जो सामाजिक स्थिति थी वह उसी रूप में ब्रिटिश शासन काल में भी विद्यमान थीं, ब्राह्मणों द्वारा शूद्रातिशूद्रों और स्त्रियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार होते थे, जिससे उनमें गहरा क्षोभ था। मराठा सरंजामदार और वतनदार कृषकों का अनेक प्रकार से शोषण करते थें, जिससे उस समय का परिवेश दूषित हो गया था। समाज में मूर्तिपूजा चरम पर थी। आस्था के नाम पर जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, झाड़–फूंक, छूआ–छूत जैसी कई बुराइयों में लोग फंसे हुए थे। कृषक वर्ग अक्सर ब्राह्मण साहूकारों के कर्ज में डूबे रहते थे। वे कभी भी साहूकारों के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाते थें, क्योंकि अनपढ़ किसान उनकी चालाकी को नहीं समझ सकते थे। अतः समाज में घोर निराशा, जड़ता और दिशाहीनता का वातावरण व्याप्त था।

महाराष्ट्र की सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए कुछ समाज सुधारकों ने प्रयास आरम्भ कर दिया था। किन्तु वे सभी समाज सुधारक उच्चवर्ग के थे और उनमें अपने कार्य के प्रति दृढ़ इच्छाशक्ति और प्रतिबद्धता का नितान्त अभाव था।

19वीं शताब्दी के समाज सुधारकों में ज्योतिबा फुले एक क्रान्तिकारी समाज सुधारक थे। उनका जन्म 11 अप्रैल सन 1827 में पूना में हुआ था। जिस दिन इनका जन्म हुआ था, उस दिन मराठों के कुल देवता 'जोतिबा' का उत्सव था। इसलिए इनका नामकरण जोतिबा पड़ा। ज्योतिबा फुले उस समय की सामाजिक संरचना में शूद्रातिशूद्रों और स्त्रियों की दयनीय स्थिति से बहुत दुःखी थे। इसलिए उनके मन में ब्राह्मण धर्म के प्रति अनेक विचार उत्पन्न होते थे। यह धर्म कैसा है? इसमें इतनी विषमता क्यों है? शूद्रातिशद्रों और स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार क्यों हो रहा है? इत्यादि प्रश्न उनके मस्तिष्क में गूँजते रहते थे। जबकि उनके ऊपर भारतीय सामाजिक व्यवस्था के साथ–साथ विश्व स्तर पर घटित होने वाले घटना क्रम का भी प्रभाव था इसलिए उस समय की व्यवस्था से बहुत दुःखी थे। ज्योतिबा को अपने जीवन में सबसे बड़ा अपमान उस समय सहन करना पड़ा, जब वे अपने ब्राह्मण मित्र के बारात में गये थे। उस बारात में एक रूढ़िवादी ब्राह्मण ने उन्हें अपमानित किया। ज्योतिबा के मन में इस अपमान के विरूद्ध विद्रोह की भावना पैदा हुई। अतः उन्होंने निश्चित कर लिया कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध संगठित होकर संघर्ष करना पड़ेगा।

ज्योतिबा फुले के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन सारी समस्याओं का निराकरण शिक्षा के बिना सम्भव नहीं है। इसीलिए उन्होंने शूद्रातिशूद्रों और स्त्रियों को शिक्षित करने का बीणा उठाया। इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप ज्योतिबा फुले ने 18 विद्यालयों की स्थापना की। शिक्षा सम्बन्धी इस महान कार्य में उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले ने पग–पग पर उनका साथ दिया। ज्योतिबा फुले ने 'बालहत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना इस उद्देश्य से किया कि विधवाएं गुप्त रूप से अपने बच्चे को जन्म दे सके। इन बच्चों की देखरेख के लिए उन्होंने अनाथाश्रम की भी व्यवस्था की। छुआछूत मिटाने के लिए ज्योतिबा फुले ने अपने पानी पीने के हौद को अछूतों के लिए खोल दिया। शराब पर पाबन्दी लगाने का प्रयास किया। उनके मस्तिष्क में यह बात घर कर गयी कि अन्याय और उत्पीड़न से समझौता करना किसी भी शर्त पर सम्भव नहीं है।

ज्योतिबा फुले का विचार था कि ब्राह्मणों ओर उनके धर्मग्रन्थों के द्वारा शूद्रातिशूद्रों और स्त्रियों पर जो सामाजिक और धार्मिक अत्याचार होते हैं, उससे अकेले लड़ पाना सम्भव नहीं है। इसलिए उन्होंने 24 सितम्बर सन 1873 को 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। सत्यशोधक समाज अपने सिद्धान्त और कार्यक्रमों के कारण महाराष्ट्र में सर्वव्यापी हो गया था। यह वहाँ पर शूद्रातिशूद्रों, कामगारों तथा किसानों में जागृति फैलाने वाला जन आन्दोलन था। इस समाज का मूल उद्देश्य सभी प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्डों एवं पाखण्डों से ब्राह्मणों की दलाली को नष्ट करना था। इसके माध्यम से ज्योतिबा फुले ने सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जागरण का बीजारोपड़ किया। ज्योतिबा फुले के पास भविष्य द्रष्टा, रचनाशीलता, प्रबोधनचातुर्य, भेदशक्ति और जनसंग्रह के गुण थे। इसी के बल पर सत्यशोधक समाज का विस्तार सम्पूर्ण महाराष्ट्र में हुआ। सत्यशोधक समाज के सदस्य जगह–जगह जाकर उसकी विचारधारा का प्रचार करते थे। इससे ज्योतिबा फुले ने व्यवस्था परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सत्यशोधक समाज की विचारधारा को आगे बढ़ाने में उस समय की समाचार पत्रों में 'सत्यदीपिका', 'सुबोध पत्रिका', 'प्रमोदसिंधु', 'इंदु प्रकाश' ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया।

ज्योतिबा फुले एक महान क्रान्तिकारी व्यक्तित्व थे। उन्होंने भारतीय समाज का वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक अध्ययन किया। उन्होंने वर्ण एवं जाति व्यवस्था का सूक्ष्म विश्लेषण किया उनके विचार यथार्थ, तर्कसंगत, मानवतावादी एवं क्रान्तिकारी है। जिन्होंने विषमतावादी समाज की कटु आलोचना करके समतामूलक समाज का विचार प्रस्तुत किया। ज्योतिबा फुले ने अपने विचार और रचनाएं अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत किया। जिसे बहुजन समाज समझ सके। ज्योतिबा फुले के उस समय प्रस्तुत किए गए विचार आज भी प्रासंगिक है। ज्योतिबा फुले की मुख्य विशेषता यह है कि ब्राह्मणों ने वर्ण और जाति व्यवस्था के नाम पर शूद्र और अतिशूद्र लोगों का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक जैसे क्षेत्रों में किस प्रकार से शोषण हुआ, इसका उन्होंने यथार्थ विश्लेषण किया। ज्योतिबा फुले ने हिन्दू धर्म का अनवरत उल्लेख ब्राह्मण धर्म के

नाम पर किया है। ब्राह्मण धर्म इसलिए कि यह उनके हितों के लिए बनाया गया है। यह धर्म शूद्रातिशूद्रों का नहीं हो सकता। इस प्रकार यह बहुसंख्यक लोगों को गुलामी में रखने वाला धर्म है। इसका यथार्थ विश्लेषण वे 'गुलाम गिरी' नामक पुस्तक में करते हैं। इस ग्रन्थ का पर्याय है, ब्राह्मणी धर्म के पर्दे के पीछे की गुलामी। देश की समाज व्यवस्था का निर्माण ब्राह्मण धर्म ने किया है। यह शूद्र, अतिशूद्र तथा स्त्रियों को गुलाम बनाने वाली व्यवस्था है। इसलिए ब्राह्मणों ने नकली और झूठे धर्मग्रन्थ लिखकर कई प्रकार की झूठी धर्म श्रद्धा बताई। इन झूठी धर्म श्रद्धा के कारण ही विषमतावादी वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था सैकड़ों साल से टिकी हुई है। इन धर्म श्रद्धाओं के कारण लोग सामाजिक व्यवस्था का वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षण नहीं कर सके। इसलिए ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मण धर्म की झूठी और काल्पनिक बातों पर सशक्त प्रहार किया। ब्राह्मण धर्म का दर्शन लोगों को गुलामी में रखता है। ऐसा ज्योतिबा फुले महसूस करते थे। इसलिए उन्होंने ब्राह्मण धर्म दर्शन की कटु आलोचना की।

ब्राह्मण धर्म मानव विकास का घोर विरोधी है। यह बात उन्होंने अपने अलग–अलग ग्रन्थों के माध्यम से बताया है। भारतीय समाज में सत्य की खोज करने की जिज्ञासा नहीं है। इसका कारण यह है कि इस देश के बहुसंख्यक लोगों को शिक्षा से वंचित रखा गया। यह बात उनकी समझ में आ चुकी थी। बहुसंख्यक लोगों को ब्राह्मण धर्म की बुरी बातों का ज्ञान नहीं होना चाहिए। इसलिए ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी लोगों पर शिक्षा प्राप्त करने पर पाबन्दी लगा दी। शिक्षा न मिलने से भारतीय समाज का कितना नुकसान हुआ है, उसे वे अच्छी तरह से समझते थे। शिक्षा सभी स्त्री–पुरूषों को मिलनी चाहिए, इसलिए नारी–शूद्र–अतिशूद्र में शिक्षा का प्रसार करने का कार्य उन्होंने अपने हाथ में ले लिया था।

ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मण धर्म की ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग–नरक और पाप–पुण्य की कल्पनाएँ कितनी झूठी और निराधार है, यह उन्होंने प्रमाण के साथ स्पष्ट किया और उन्होंने विभिन्न पुस्तकों में इन्हीं सब बातों को कई तरीके से समझाने का प्रयास किया है। इन झूठी बातों के कारण अज्ञानी लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। जिससे वे ब्राह्मण धर्म

अर्थात् ब्राह्मणों के गुलाम बन गए। उन्होंने यथार्थ विचारों के आधार पर ब्राह्मण धर्म का विरोध किया। ऐसा उन्होंने इसलिए किया है कि यह धर्म वैज्ञानिक और मानवतावादी नियमों के विरूद्ध है। दिन–रात मेहनत करने वाला किसान और मजदूर वर्ग ब्राह्मणों के चक्रव्यूह में फंसकर लड़ रहा हैं लेकिन धर्म का इतना गहरा प्रभाव है कि वह इस चक्रव्यूह को तोड़कर स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इस दुर्दिन में जीने वाले शूद्रों का यथार्थ विश्लेषण ज्योतिबा फुले ने किया है।

ज्योतिबा फुले का यह विचार आज के दौर में भी बड़ा प्रासंगिक है। ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मण धर्म के ढेरों काल्पनिक देवी–देवीताओं को अपने तर्कबल से 'गुलामगिरी' ग्रन्थ में खण्डन किया। हिन्दू धर्म के अवतारवाद की परिकल्पना को नकारा हैं ज्योतिबा की ईश्वर विषयक कल्पना निर्गुण, निराकार थी, ठीक कबीर जैसी एकेश्वरवादी। ज्योतिबा फुले ने ईश्वर के अस्तित्व को 'निर्मिक' के रूप में स्वीकार किया है। वह 'निर्मिक' दया धन है, वह किसी मनुष्य को ऊँच या किसी को नींच नहीं बनाया। क्योंकि वह अनन्त है और हमारा जीवन अत्यन्त अल्प और क्षणभंगुर है। मनुष्य अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से 'निर्मिक' की अपरम्पार शक्ति को समझ नहीं सकता। वे निर्मिक के नाम स्मरण की कोई आवश्यकता नहीं मानते और सत्य को ही अपना धर्म मानते है। उन्हें सिर्फ लौकिक जीवन में विश्वास था। उन्होंने सभी मनुष्यों को एक समान माना है। ज्योतिबा फुले अपनी पुस्तक 'सार्वजनिक सत्यधर्म' में इस सम्बन्ध में बड़ा रोचक वर्णन किया है।

ज्योतिबा फुले का राजनीतिक चिंतन का स्पष्ट स्वरूप यह है कि वे ऐसी किसी भी शासन व्यवस्था को जिसमें शोषण होता हो, उसके वे सख्त खिलाफ थे। वे ब्रिटिश शासन के पक्षधर इसलिए थे कि पेशवाओं के शासन से शोषण और अत्याचार कम हुआ हैं। इस शासन में शूद्रातिशूद्रों पर होने वाले सामाजिक अत्याचार में भी कमी आयी है। ज्योतिबा फुले का अंग्रेज परस्त होने के मूल में यह है कि शूद्रातिशूद्रों तथा स्त्रियों की मुक्ति का सबसे उपयुक्त शासन यही है। इसलिए सन 1857 को विद्रोह के समय उन्होंने साथ नहीं दिया। दूसरी बात यह थी कि महाराष्ट्र में इस आन्दोलन का प्रभाव लगभग नगण्य ही था।

19वीं शताब्दी में मध्यवर्ग में होने वाली राजनीतिक चेतना से ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध आवाज उठने लगी थी। इसी आवाज को गति देने के लिए में ए0ओ0 ह्यूम द्वारा स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ज्योतिबा फुले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को उच्चवर्गों की संस्था मानते थे। उच्च वर्गों का प्रतिनिधित्व होने के कारण वे शूद्रातिशूद्रों के हितों के बारे में नहीं सोच सकते थे। उच्च वर्ग के लोग भले ही कहते हों कि सरकारी जगहें सभी जाति धर्मों के लिए खुली रखी जाय। अन्ततः मिलेगी, उच्चवर्ग के लोगों को ही, ऐसा उनका मत था। ब्राह्मणवाद के प्रभुत्व के कारण इस संस्था में किसान, शूद्र और अतिशूद्र टिक नहीं पाएंगे। इसलिए उनकी दृष्टि में शूद्र–अतिशूद्र की स्वतन्त्रता और अस्मिता का प्रश्न सर्वप्रमुख था। ज्योतिबा फुले द्वारा नगरपालिका सदस्य के रूप में भी शूद्रातिशूद्रों और स्त्रियों के हित के लिए अनेक कार्य किए गए। ज्योतिबा के मन में स्त्री शिक्षा और दलित शिक्षा का प्रश्न सबसे बड़ा और अहम् प्रश्न था। इस दिशा में ज्योतिबा फुले ने जो प्रयास किया, वह सराहनीय था। यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि वे उस घर में जहाँ शिक्षा का नामोनिशान नहीं था, वहाँ उसकी दीप जला देना चाहते थे। उन्होंने शूद्रातिशूद्रों और स्त्री शिक्षा के लिए ऐसा दीप जलाया कि उसकी लौ आज तक नहीं बुझी। उनका विचार था कि शिक्षा के बिना इस वर्ग का कल्याण सम्भव नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने प्रयास और ब्रिटिश सरकार द्वारा इस क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयासों का भरपूर लाभ उठाया। इसमें उनकी पत्नी सावित्रीबाई ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस दिशा में सन 1848 में पूना के बुधवार पेठ में प्रथम पाठशाला स्त्रियों के लिए खोली। जोतिबा फुले ने नारी और शूद्रातिशूद्रों की शिक्षा को सामाजिक क्रान्ति का एक मिशन माना। शिक्षा किस प्रकार की और कैसी हो? इस पर विचार प्रस्तुत करते हुए सराहनीय कार्य किया।

ज्योतिबा फुले ने अपनी विभिन्न रचनाओं के माध्यम से ब्राह्मणवाद की खोखली मान्यताओं की पोल खोली है। उन्होंने दलितों, किसानों, और महिलाओं को अपनी दासता के कारणों की खोजने की ओर प्रेरित किया। ज्योतिबा फुले की कलम और वाणी दोनों ही क्रान्तिकारी थी।

जिससे ब्राह्मण पंडितों की जबान लड़खड़ा जाती थी। ज्योतिबा फुले का विचार था कि ब्राह्मणवादी चौखट के भीतर रहकर किसी भी प्रकार का सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि सुधारवादी ब्राह्मण, वेद, उपनिषद के बाहर जाने को तैयार नहीं है। इसलिए वे सार्वजनिक सभा को उपहास स्वरूप 'सार्वजनिक भट्ट सभा' कहते थे ज्योतिबा फुले अपने व्यक्तित्व और कृतित्व द्वारा बहुजन समाज, किसानों और स्त्रियों को ब्राह्मणों की मानसिक गुलामी से मुक्त कराना चाहते थे। उनकी दृष्टि बहुत व्यापक और विशाल थी। यह विशालता उनकी 'गुलामगिरी' पुस्तक की प्रस्तावना में उन लोगों के लिए था, जिन्होंने वहाँ के काले लोगों को दासता से मुक्ति दिलाने के लिए कार्य किया था। उसी प्रकार ब्राह्मणों को भी चाहिए कि शूद्रातिशूद्रों को अपनी शोषणवादी प्रवृत्तियों से मुक्त कर दें।

ज्योतिबा फुले की रचनाओं में उस समय के समाज की यथार्थ झलक मिलता है, जो इतिहास निर्माण के लिए आवश्यक तत्व है। ज्योतिबा फुले की रचना 'किसान का कोड़ा' में किसानों की दयनीय स्थिति का बड़ा ही मार्मिक तथा प्रभावशाली चित्रण किया गया है। जिससे आज न केवल महाराष्ट्र अपितु सम्पूर्ण भारत के किसानों की दयनीय स्थिति की जानकारी मिलती है। ज्योतिबा फुले स्वयं किसान परिवार से थे इसलिए किसानों की वास्तविक स्थिति को वे स्वयं भोगे थे। अतः उन्होंने किसानों के नारकीय जीवन का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

ज्योतिबा फुले के विभिन्न पहलुओं को उजागर करना इसलिए नितान्त आवश्यक हो जाता है कि आजादी के 72 वर्ष बाद में दलित समाज में असुरक्षा की भावना विद्यमान है। दलित उत्पीड़न की घटनाओं पर रोक नहीं लग पा रही है। दलित असंतोष के कारणों की तलाश किया जाय तो, समझ में आता है कि इसके मूल में हमारे तन्त्र की अक्षमता से कही अधिक हिन्दू धर्म की विसंगतियां जिम्मेदार है। जिनमें आकाश के 33 करोड़ देवी–देवताओं के लिए तो जगह हैं, लेकिन धरती के जीवित मनुष्यों के प्रति कोई सहिष्णुता नही दिखती। उनके साथ सामाजिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों के लोग प्रशासनिक कार्यवाही करने

से डरते हैं क्योंकि अभी भी उन पर अशिक्षा और समाज के उच्च वर्ग का दबाव कायम है। समाज के कुछ पढ़े लिखे दलित वर्ग के उत्थान से सम्पूर्ण दलित समाज का उत्थान नहीं हो सकता। दलित समाज का उत्थान तभी सम्भव है जब वे उच्च शिक्षित बनेंगे तथा अपने हक और अधिकार को जानने लगेंगे। सरकार द्वारा केवल साक्षर बना देने से उनका विकास नहीं हो सकता। इसलिए ज्योतिबा फुले द्वारा उस समय किए गए कार्यों तथा उनके विचारों की प्रासंगिकता आज बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है।

अतः प्रस्तुत पुस्तक में 19वीं सदी का महाराष्ट्र, उस समय शूद्रातिशूद्रों और स्त्रियों की स्थिति, ज्योतिबा फुले की कृतियों तथा कार्यों का ऐतिहासिक परिपेक्ष में आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है।

M,0 ckyd'oj
एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, भदोही, उ0प्र0।

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

y[kd dk eukxr

भारतीय सामाजिक क्रांति के प्रणेता महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले के संघर्ष और उनकी विचारधारा से प्रभावित होकर मैंने उनके बारे में पढ़ना शुरू किया। उन्होंने बताया कि शूद्रातिशूद्रों एवं स्त्रियों का पतन शिक्षा न मिलने के कारण हुआ, जिसके लिए ब्राह्मण धर्म की खोखली और मनगढंत विचारधारा जिम्मेदार है। ज्योतिबा फुले ने इसलिए इनको शिक्षित करने का बीड़ा उठाया और ब्राह्मण धर्म पर प्रहार करने के लिए सत्यशोधक समाज की स्थापना की।

सर्वप्रथम मैंने यह बताया है कि मुझे महात्मा ज्योतिबा फुले पर कार्य करने की प्रेरणा कहाँ से मिली? क्यों उन पर कार्य करना चाहा? इस सम्बन्ध में मुझे अपने गाँव के परिवेश में देखना पड़ेगा। मेरा जन्म 25 मई 1973 ई० ग्राम व पोस्ट–पचेवरा, तहसील–चुनार, जिला–मिर्जापुर, उ0प्र0 में हुआ था। मेरे पिता का नाम श्री विश्राम और माता का नाम श्रीमती फूलकुमारी देवी है। मेरे गांव में ब्राह्मण, कुर्मी, कुम्हार, लोहार, नाई, धोबी, अहिर, चमार, डोम एवं मुसलमान जाति से जुड़े लोग रहते हैं। मेरे गांव में एक परिवार डोम जाति का था, जो अब गांव से पलायन कर चुका है। गाँव में मैंने बचपन में देखा था कि डोम जाति के लोग पत्तल से जूठा खाना इकट्ठा कर और उसे सूखा कर खाने को मजबूर थे। कुआँ पर पानी लेने के लिए कोई उच्च जाति का पानी ले रहा है तो निम्न जाति के लोग कुएँ को छू नहीं सकते थे। माना कि अब गांव में ऐसी स्थिति नहीं रह गई है, क्योंकि अब गांव में बहुत सारे लोग शिक्षित हो गए हैं। गांव से जुड़े एक घटना की चर्चा करना चाहूँगा। मेरे गांव में चमार जाति के लोग दक्षिणी पूरे पर रहते हैं, इसी पूरे के पास ब्राह्मण जाति के लोग अपने बैल को एक चमार जाति के घर के पास

SAMPLE

गढ्ढा खोदकर दफना रहे थे, उसी समय उस घर की महिला ने कुछ आपत्ति की, जिसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण लोग उस महिला को बैल वाले गड्ढे में डाल दिये। महिला रोने–गिड़गिड़ाने लगी, तब किसी तरह से उसे निकाला गया। इस प्रकार से जाति व्यवस्था और अशिक्षित होने का क्रूरतम् स्वरूप मैंने अपने गांव में देखा था। उस समय मेरे ज्ञान का स्तर इतना कम था कि मैं महात्मा ज्योतिबा फुले के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था, परन्तु इसी प्रकार के विचारधारा के धनी संत कबीर के बारे में प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ा था। इसलिए संत कबीर की विचारधारा से मैं बचपन से प्रभावित था। जब मुझे उच्च शिक्षा के लिए बी0ए0, इतिहास (आनर्स) से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में पढ़ने का अवसर मिला, तब मैं महात्मा ज्योतिबा फुले एवं उनके द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज के बारे में जाना। मैं तभी से इस महान व्यक्तित्व के बारे में कुछ पढ़ने एवं जानने के लिए प्रेरित हुआ। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप मैंने वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0प्र0 से जोतिबा फुले का व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध उपाधि प्राप्त किया। महात्मा ज्योतिबा फुले पर और विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के बाद मैंने इस शोध प्रबंध को संशोधित एवं परिमार्जित करते हुए पुस्तक, प्रकाशित करने के बारे में सोचा। आज मुझे इस बात की अपार खुशी है कि मेरी पुस्तक प्रकाशपुंज महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले के रूप में प्रकाशित होने जा रही है। इस दुरूह कार्य को पूर्ण करने में श्रद्धेय गुरूवर्य डॉ0 विजय प्रताप सिंह और मेरी धर्मपत्नी श्रीमती कुमुद प्रजापति का अविस्मरणीय योगदान रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से मैंने समाज की सड़ी–गली जाति व्यवस्था पर महात्मा फुले के विचारधारा से परिचित कराया है, तथा उसका वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयास किया है। इतिहास के अध्येता होने के नाते किसी भी वस्तु का साक्ष्यों के आधार पर विश्लेषण करने का प्रयास करता हूँ। महात्मा फुले एक ऐसे समाज सुधारक थे, जिसके लिए 1933 ई0 में महात्मा गांधी ने 'वास्तविक महात्मा' कहाँ था और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर उन्हें अपना गुरू मानते थे। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि उच्च वर्गीय मानसिकता से ग्रस्त

इतिहासकारों ने महात्मा फुले को इतिहास के पन्नों में उचित स्थान नहीं दिया है। मैं महसूस करता हूँ कि राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद आदि जो उच्चवर्गीय समाज सुधारक रहे हैं, उनके कार्यों का वृहद वर्णन इतिहास में है किन्तु महात्मा फुले और उनके सत्यशोधक समाज का संक्षिप्त विवरण कुछ पुस्तकों में मिलता है। मैं समझता हूँ कि महात्मा फुले शूद्रातिशूद्रों और स्त्रियों के लिए प्रकाशपुंज थे, उनके विचारों में कोई संकीर्णता नहीं थी। यदि उनके मन में कहीं भी जातिगत दुर्भावना होती तो काशीबाई जैसी विधवा ब्राह्मणी जिसे किसी ने गलत नियत से गर्भवती कर दिया था और वह आत्महत्या करने जा रही थी। महात्मा फुले दम्पत्ति ने लोकलाज से उसे बचाते हुए गोपनीय तरीके से उसके बच्चे का जन्म कराया। जिसे उन्होंने अपना बेटा बना लिया। इस प्रकार से उनको किसी प्रकार का जातिगत विभेद नहीं था और वे निरपेक्ष भाव रखने वाले समाज सुधारक थे।

मैं महामना महात्मा फुले पर कार्य करना अपना परम् सौभाग्य समझता हूँ। आज हम 21वीं सदी के दौर से गुजर रहे हैं। भारत डिजिटल हो रहा है, संचार क्रांति, मिडिया क्रांति के दौर में भी महात्मा फुले की विचारधारा से हम बेहतरीन भारत का निर्माण कर सकते हैं। जिसे हम अतुल्य भारत कह सकते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि समाज के पद्दलित जातियों और स्त्रियों के उत्थान के बिना हम देश का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकते, इसलिए जड़वत जाति व्यवस्था को तोड़ने की आवश्यकता है। इस दिशा में भाई परमानंद और संतराम बी0ए0 ने भी जांति–पांति तोड़क मण्डल के माध्यम से प्रयास किया किन्तु भारत विभाजन के कारण यह आंदोलन स्थगित हो गया, क्योंकि इस आंदोलन का केन्द्र लाहौर था। महात्मा फुले के विचारधारा की सार्थकता तभी स्थापित होगी, जब भारत का सबसे निचला तबका शिक्षित एवं सुखी होगा। भारत में विभेद के लिए सबसे बड़ी बाधा जाति व्यवस्था है। ब्राह्मण धर्म सम्पूर्ण मानव विकास का विरोधी रहा है, इसलिए सत्य की खोज पर बल नहीं दिया, अपितु पाप–पुन्य, पुनर्जन्म, जप–तप, ईश्वर, आत्मा आदि में उलझाए रखा। महात्मा फुले सत्यशोधक

समाज के माध्यम से सत्य आचरण पर बल दिया और इसी से समस्त मानवता सुखी हो सकती है और ब्राह्मणवाद की खोखली व्यवस्था को समाप्त किया जा सकता है।

अतः इस पुस्तक के माध्यम से ज्योतिबा फूले की विचारधारा का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है, जिस प्रकार समाज में इतिहास की विश्वसनीयता विद्यमान है, उसी प्रकार से मैंने उनकी विचारधारा को वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

fuokl LFkku
1K/1K
न्यू मम्फोर्डगंज
प्रयागराज, उ0 प्र0

M,0 ckyd'oj
एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, भदोही, उ0प्र0।

नमूना • SAMPLE

fo"k; lph

	शुभेच्छा	*v*
	संदेश	*vii*
	प्राक्कथन	*ix*
	प्रस्तावना	*xv*
	लेखक का मनोगत	*xxv*
1.	19वीं सदी में महाराष्ट्र का स्वरूप	1
2.	महात्मा ज्योतिबा फुले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज की रूपरेखा	25
3.	महात्मा ज्योतिबा फुले का सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण	52
4.	महात्मा ज्योतिबा फुले की राजनीतिक विचारधारा	82
5.	महात्मा ज्योतिबा फुले और स्त्री शिक्षा	107
6.	महाराष्ट्र के सामाजिक आन्दोलन में महात्मा ज्योतिबा फुले का योगदान एवं प्रभाव	136
7.	महात्मा फुले के विचारों का मूल्यांकन	170
	परिशिष्ट	197
	सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची	217

SAMPLE

नमूना • SAMPLE

1

19वीं सदी में महाराष्ट्र का स्वरूप

भारत एक विशाल प्रायद्वीप है। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में हिन्द महासागर स्थित है, तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर से घिरा हुआ है। जो भारत को एक प्राकृतिक स्वरूप प्रदान करता है। यूनानियों ने इसे 'इण्डिया' तथा मध्यकालीन लेखकों ने इसे 'हिन्दू अथवा हिन्दुस्तान' के नाम से सम्बोधित किया है। वर्तमान समय में भारत का तीसरा सबसे बड़ा राज्य महाराष्ट्र है।

महाराष्ट्र की जलवायु की दृष्टि से कुछ खास प्राकृतिक खूबियाँ हैः जिनसे गंगा सिंधु तथा अन्य बड़ी नदियाँ जो अरब अथवा हिन्द महासागर में गिरती हैं – की घाटियों और निचले हिस्सों में रहने वाले लोग वंचित है। महाराष्ट्र की प्राकृतिक संरचना की विशेषताएं ये हैं कि यह दो तरफ से बड़ी–बड़ी पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई सह्याद्रि की पहाड़ियाँ तो दूसरी तरफ पूर्व से पश्चिम तक फैली सतपुड़ा और विन्ध्य पर्वत की श्रृंखलाएं हैं।[1] इन पर्वतों को अलग करती हुई कुछ छोटी–छोटी ऊबड़–खाबड़ पहाड़ियाँ भी हैं, जो महाराष्ट्र की छोटी–छोटी नदियों के लिए जल विभाजक हैं। ये नदियाँ कृष्णा और गोदावरी में मिलती हैं। इन कारणों से यह प्रांत जितना खुरदुरा तथा असमतल है, उतना भारत का दूसरा भाग नहीं। भौगोलिक दृष्टि से समुद्र तथा सह्याद्रि के बीच का हिस्सा कोंकण भी महाराष्ट्र का अंग है। इस प्रकार पर्वत शिखरों पर बसा पठार और नीचे

SAMPLE

नदी तथा घाटियों को समेटता हुआ यह प्रदेश महाराष्ट्र के नाम से जाना जाता है।[2]

वर्तमान समय में महाराष्ट्र भारत का तीसरा सबसे बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल 3,07,577 वर्ग किलोमीटर है। यह अरब सागर के किनारे भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित है। इसके उत्तर में गुजरात, दादरा और नगर हवेली तथा मध्य प्रदेश, पूर्व में छत्तीसगढ़ और आन्ध्र प्रदेश, दक्षिण में कर्नाटक, गोवा तथा आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना और पश्चिम में अरब सागर है। महाराष्ट्र का बड़ा भाग दक्षिण के पठार तथा पश्चिमी घाट से बना हुआ है। पश्चिमी घाट और अरब सागर के बीच पश्चिमी तट के तंग मैदान है, जिसे कोंकण कहा जाता है। महाराष्ट्र की प्रमुख कृष्णा और गोदावरी नदियाँ बंगाल की खाड़ी की ओर बहती हैं। महाराष्ट्र के मराठवाड़ा और विदर्भ काली मिट्टी के कारण अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश है।[3]

महाराष्ट्र की जलवायु सुहावनी है। पश्चिमी घाट के भागों में पर्याप्त वर्षा होती है, परन्तु पूर्वी भाग में वर्षा कम मात्रा में होती है। पूर्वी भाग (विदर्भ) काली मिट्टी का प्रदेश होने के कारण कपास, गेहूँ, चावल, तम्बाकू, तिलहन, ज्वार और बाजरा की अच्छी उपज होती है। पहाड़ी जंगलों में आबनूस और सागवन के वृक्ष और तटीय क्षेत्रों में नारियल के वृक्ष बहुतायत मात्रा में पाये जाते हैं।[4]

महाराष्ट्र के पहाड़ी श्रृंखलाओं पर बने दुर्ग उसे स्वाभाविक भौगोलिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। पर्वतीय प्रकृति के कारण यहाँ की मिट्टी अच्छी नहीं है। इसलिए यहाँ पर लोग थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बसे हुए हैं। प्रकृति ने पहाड़ी और मैदानी इलाकों को क्षति–पूर्ति के सिद्धान्त के हिसाब से उपहार दिया है। यह पूरा का पूरा एक त्रिकोण सा बनाता है, जिसका आधार दमन से कारवार तक सह्याद्रि की श्रृंखला तथा समुद्र इसका अनुलम्ब है। सतपुड़ा जो नागपुर को पार करता हुआ, पूर्व में गोदावरी तथा उसकी उपनदियों के जलसम्भार तक फैला हुआ है, जो त्रिकोण का कर्ण भाग है। महाराष्ट्र की इन प्राकृतिक विशेषताओं तथा उत्तरी भारत तथा दक्षिणी प्रायद्वीप को मिलाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण उसकी स्थिति अत्यन्त प्रभावशाली हो जाती है।[5]

इन प्राकृतिक दयाओं के अतिरिक्त महाराष्ट्र के इतिहास पर वहाँ के लोगों के चरित्र की भी छाप रही है। उत्तर भारत पर आर्यों का प्रभुत्व था, जिसके कारण वहाँ की मूल जातियाँ प्रभावहीन होकर देश के पहाड़ी हिस्सों में जा बसी। दक्षिणी प्रायद्वीप में द्रविणों की प्रभुता बनी रही। इसलिए आर्यों में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे अपने प्रभाव का सिक्का यहाँ भी जमा सकें। इन दो प्रमुख जातियों के विभाजन का परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र के पठार पर ये दोनों जातियाँ समान संख्या में इस तरह बस गयी कि दोनों जातियों की अच्छाइयाँ बनी रही, परन्तु इन जातियों के मिश्रण का सबसे अच्छा प्रभाव उनकी भाषा का निरालापन है। जिसका आधार द्रविड़ रहे हैं। फिर भी आर्यों के प्रभाव से प्रभावित रहा है। महाराष्ट्र में बस गए आर्यों में भी शुरू–शुरू में आए उपनिवेशवादियों तथा बाद के हमलावारों का यथोचित मिश्रण है।[6] जबकि स्वामी विवेकानंद इस सम्बन्ध में अपना विचार 'द फ्यूचर ऑफ इण्डिया' में व्यक्त करते हैं कि –''अब एक सिद्धान्त निकला है कि मनुष्यों की एक खास प्रजाति थी, जिसका नाम द्रविड़ था और जो दक्षिण भारत में रहती थी और वह उत्तर भारत में रहने वाली आर्य नामक प्रजाति से सर्वथा भिन्न थी। यह भी कहा जाता है कि दक्षिण भारत में जो ब्राह्मण है, केवल वे ही थोड़े से आर्य हैं, जो उत्तर भारत से दक्षिण की ओर गये थे। दक्षिण भारत में बाकी जितने लोग है, उनकी जाति और प्रजाति ब्राह्मणों की जाति और प्रजाति से भिन्न है। श्रीमान भाषा शास्त्री जी आप क्षमा करेंगे। ये सारी बाते निराधार हैं।''

सच बात तो यह है कि द्रविड़ शब्द जाति वाचक नहीं अपितु स्थान का बोध कराता है। महाराष्ट्र की आर्य–द्रविड़ की मिली–जुली संस्कृति है।

19वीं सदी के महाराष्ट्र की राजनीतिक स्थिति को जानने के लिए पूर्व के इतिहास का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रमाणिक इतिहास सातवाहन वंश से आरम्भ होता है। सातवाहन सम्राटों ने न केवल विदेशियों के विरूद्ध अपनी स्वाधीनता की रक्षा की, अपितु साहित्य, कला, व्यापार–वाणिज्य आदि को प्रोत्साहन कर अपनी प्रजा की भौतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।

तत्पश्चात वाकाटक, कलचुरी, चालुक्य, राष्ट्रकूट तथा यादव राजवंशों ने शासन किया। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद अलाउद्दीन खिलजी ने इन क्षेत्रों की ओर अपना अभियान जारी रखा। कुछ समय बाद बहमनी वंश की स्थापना हुई। बहमनी वंश के बाद वहाँ की सत्ता छोटी–छोटी सल्तनतों में विभाजित हो गयी।

17वीं शताब्दी में शिवाजी के प्रभाव के बाद आधुनिक मराठा राज्य का उदय हुआ। उन्होंने बिखरी हुई ताकतों को एकजुट कर शक्तिशाली सैन्यबल का निर्माण किया। शिवाजी के उत्कर्ष के कारण मराठों की स्थिति में सुधार हुआ। शिवाजी का जन्म भोंसले वंश में 20 अप्रैल सन 1627 ई0 को शिवनेर के दुर्ग में हुआ था।[7] इनके पिता शाहजी भोंसले अहमदनगर के प्रमुख सेनानायक तथा बीजापुर राज्य में अपनी क्षमता के बल पर प्रमुख सामन्त बन गए। शिवाजी की माता का नाम जीजाबाई था। इनका बचपन दादाजी कोणदेव के संरक्षकत्व में बीता। शिवाजी ने मुगल सम्राट औरगंजेब के समय मुगलों से अनवरत संघर्ष किया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन तथा मराठा साम्राज्य का उदय आरम्भ हो जाता है। इतिहासकार ग्राण्ड डफ के अनुसार ''19वीं शताब्दी में मराठों का उत्कर्ष अचानक हो गया था। इस कथन में सत्यता का अभाव परिलक्षित होता है। मराठों का उत्थान शिवाजी के काल से चली आ रही तैयारी का स्वाभाविक परिणाम था। मराठा सरदारों ने अंग्रेजों को प्रथम, द्वितीय व तृतीय आंग्ल–मराठा युद्ध में जबरदस्त चुनौती दी। संयोग से तृतीय आंग्ल–मराठा युद्ध के फलस्वरूप पूरा महाराष्ट्र ब्रिटिश सत्ता के आधीन आ गया।[8]

शिवाजी के बाद भोसले परिवार से शम्भाजी, राजाराम, ताराबाई तथा शाहूजी ने शासन किया, किन्तु शाहूजी के समय 1713 ई0 में बालाजी विश्वनाथ को पेशवा पद पर नियुक्त किये जाने के बाद सत्ता पेशवा के आधीन आ गयी। तत्पश्चात पेशवा पद पर बाजीराव प्रथम शासक हुआ। उसके बाद बालाजी बाजीराव, पेशवा माधवराव, पेशवा नारायणराव, पेशवा रघुनाथ राव, पेशवा बाजीराव द्वितीय ने शासन किया। पेशवाओं के शासन काल में उनके अयोग्य नेतृत्व के कारण राजनीतिक अस्थिरता बनी रही।[9] पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा दौलतराव

ने अपनी अयोग्यता के कारण मराठा साम्राज्य को गर्त में ढकेल दिया। यहाँ तक की पेशवा बाजीराव II को लोग हत्यारा समझते थे। उसने अपने निजी स्वार्थ के कारण बेसिन की सन्धि की और मराठों की स्वतन्त्रता गिरवी रख दी। दौलतराव सिंधिया, महादजी सिंधिया का अयोग्य उत्तराधिकारी था। वह आलसी तथा विलासी था। इतिहासकार जी0एस0 सरदेसाई ने इन दोनों शासकों के विषय अपना मत व्यक्त किया है कि ''इन दोनों नेताओं के दुष्कृत्यों से पूना दरबार तथा समाज का इतना अधिक पतन हुआ कि किसी का भी जान–माल और मान सुरक्षित नहीं रहा। देश के दूर भागों में रहने वाले लोग भी कुशासन) उत्पीड़न तथा लूट आदि से दुःखी थे। दक्षिणी प्रदेशो के सरदार और जागीरदार दुःखी होकर अंग्रेजों की शरण में चले गए''।[10]

मराठा साम्राज्य अपने पराकाष्ठा काल में एक ढीला–ढाला संगठन था। जिसका नेतृत्व छत्रपति या पेशवा के हाथों में था। पेशवा ने जब छत्रपति की शक्तियाँ अपने हाथ में ले ली तो आधीनस्थ सरदारों गायकवाड़, होल्कर, सिंधिया तथा भोंसले ने अपना अर्द्धस्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। पेशवा के प्रति राजभक्ति केवल मौखिक रह गयी। पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद ये सामन्तशाही इकाईयाँ छिन्न–भिन्न हो गयी और पारस्परिक झगड़ों के कारण पतन दिखाई देने लगा। अब होल्कर, सिंधियां, भोंसले एक–दूसरे के विरूद्ध युद्ध करने लगे। आपसी ईर्ष्या तथा द्वैष का लाभ ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उठाया। सन 1803 में जब सिंधियां तथा भोंसले कम्पनी के विरूद्ध लड़े तो होल्कर अलग रहा। और सन 1804 में होल्कर की भी बारी आ गयी। इस प्रकार मराठों में राजनीतिक एकीकरण का नितान्त अभाव था।[11] उधर अंग्रेज कूटनीति में बहुत माहिर थे। अंग्रेजों ने कूटनीति से शत्रुओं को अलग–थलग करके कमजोर कर दिया। द्वितीय आंग्ल–मराठा युद्ध में गायकवाड़ तथा दक्षिणी मराठा जागीरदारों को अंग्रेजों ने अपने पक्ष में कर लिया। पेशवा बेसिन की सन्धि से पूर्व ही अंग्रेजों की तरफ था। इस कूटनीति से सिंधिया को विजय प्राप्त करना सुगम हो गया। इसी प्रकार दक्षिणी जागीरदारों ने श्रीरंगपट्टम के दुर्ग के विरूद्ध अंग्रेजों की बहुत सहायता की।[12] अंग्रेजों की गुप्तचर व्यवस्था भी बहुत सुदृढ़ थी, जबकि मराठे

लोग सैनिक गुप्तचर व्यवस्था से अपरिचित थे। इन सब के साथ–साथ मराठा शक्ति को समाप्त करने में अंग्रेजों के प्रगतिशील दृष्टिकोण का बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। वे वैज्ञानिक आविष्कारों समुद्री यात्राओं तथा उपनिवेश प्राप्त करने में लगे हुए थे, जबकि पेशवा धर्म के नाम पर ब्राह्मणों को विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ देकर पुण्य कमा रहे थे। फलतः ब्राह्मण–मराठा मतभेद बढ़ता गया। जिसका उल्लेख जी0डब्लू0 फोरेस्ट ने अपनी पुस्तक 'मराठा सीरीज' में किया है। इस प्रकार मराठों की राजनीतिक व्यवस्था छिन्न–भिन्न होती गयी और अंग्रेज गवर्नर जनरल के कुशल नेतृत्व के कारण उनका राजनीतिक विस्तार होता जा रहा था।[13] 19वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक अंग्रेजों का सम्पूर्ण भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। साम्राज्य विस्तार में लार्ड वेलेजली तथा लार्ड डलहौजी का विशेष योगदान रहा।

महाराष्ट्र का प्रशासनिक ढाँचा शिवाजी के प्रशासनिक व्यवस्था पर आधारित था। शिवाजी का प्रशासन अष्ट प्रधान व्यवस्था पर आधारित था। इस अष्ट प्रधान में पेशवा सबसे प्रमुख था, जो मराठा प्रशासन का प्रधानमंत्री होता था। जिसका स्थान राजा के बाद था। दूसरा स्थान अमात्य का था, जो वित्तमंत्री के समान, तीसरा स्थान वाकयानवीस का था जो दैनिक कार्यों का लेखा–जोखा रखता था और गुप्तचरों की व्यवस्था करता था। चौथा स्थान सचिव का था, जो राजकीय पत्रों को पढ़कर उसकी भाषा शैली देखता था तथा परगनों का हिसाब–किताब रखता था। पाँचवा सुमंत या दबीर कहलाता था जो विदेशमंत्री के समान था। छठा सेनापति या सर–ए–नौबत कहलाता था। सातवां पंडितराव या दानाध्यक्ष होता था। इसका कार्य धार्मिक कृत्यों की तिथि निश्चित करना, पापाचार व धर्मभ्रष्टता के लिए दण्ड निश्चित करना, धर्म एवं जाति–सम्बन्धी झगड़ों को निपटाना था। आठवाँ न्यायधीश होता था जो सैनिक और असैनिक मामले का न्याय करता था। यही मराठा प्रशासन का मुख्य आधार था।[14]

पेशवा का सचिवालय पूना में था। जिसे 'हुजूर–ए–दफ्तर' कहा जाता था। यह मराठा प्रशासन का केन्द्र बिन्दु था। यहाँ पेशवा द्वारा नियुक्त पदाधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के सहयोग से कार्य

करते थे। लेखा–जोखा विभाग का अधिकारी फड़नीस अब केवल फड़नीस न रहकर सारे 'हुजूर–ए–दफ्तर' का निरीक्षण और नियंत्रण का कार्य करता था। उसके अधीन 200 कारकून थे। इस 'हुजूर–ए–दफ्तर' का मुख्य कार्य राजस्व और प्रशासन में सैनिक, असैनिक और धार्मिक विभागों का कार्य करना था। यद्यपि 'हुजूर–ए–दफ्तर' में अनेक विभाग थे। जिसमें कुछ विभाग के नाम निम्नवत है।[15]

फड़नवीस के निरीक्षण और निर्देशन में 'चालते दफ्तर' था। इसकी कई शाखा, थी। जैसे –

(1) ''फड़''– जो लेखा–जोखा का कार्य करता था और प्रतिदिन के कार्यों का रिकार्ड 'रोज किर्द' में रखता था।

(2) ''बेहड़''– जो पिछले वर्ष के आमदनी और व्यय के आधार पर तथा वर्ष की सम्भावित आय–व्यय के आंकड़ों के आधार पर आय–व्यय पत्रक (बजट) तैयार करता था।

(3) सरंजामी विभाग–यह विभाग 'संरजामी' और 'दुमल्ला' भूमि (दोहरी सत्ता के अधीन भूमि) का हिसाब–किताब रखता था। यह राज्य सरकार की वर्ष की कुल आमदनी) कुल व्यय और बचे हुए धन का हिसाब तैयार करता था। इसे 'तरजुमां' कहा जाता था। यह 'खतौड़ी' का भी कार्य करता था। यहाँ 'खतौड़ी' का अभिप्राय सभी प्रकार के विभागों के व्यय को वर्गीकृत मदों में लिखना है। पेशवा दफ्तर में सभी प्रकार के राजकीय प्रपत्रों की प्रतिलिपि संग्रहित करके रखी जाती थी।

पेशवा कालीन शासन को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए प्रशासकीय इकाइयों में बांटा गया था। पेशवा का स्वराज्य प्रांतों या सरकारों में विभक्त था। प्रत्येक सरकार परगनों में तथा प्रत्येक परगना या महाल, ग्रामों का समूह था।[16] प्रत्येक सरकार मामलतदार नामक अधिकारी के अधीन था। अपने क्षेत्र में मामलतदार न्याय, प्रशासन और वित्त में सर्वोच्च अधिकारी था। खानदेश, गुजरात और कर्नाटक में मामलतदार और पेशवा के बीच में सरसूबेदार नामक अन्य अधिकारी भी होता था। पेशवा का प्रतिनिधि होने के कारण वह अपने क्षेत्र में कृषि,

उद्योग, व्यवसाय, दीवानी और फौजदारी न्याय 'शिबन्दी' और पुलिस पर नियंत्रण के लिए धार्मिक और सामाजिक समस्याओं का निराकरण आदि के लिए उत्तरदायी था। यद्यपि मामलतदार के अधिकार और सत्ता व्यापक थे, परन्तु वह निरंकुश अधिकारी नही हो सकता था। उसके अधिकारों और राजसत्ता पर परम्पराओं, वंशानुगत जमींदारों और आठ दरखदारों का नियंत्रण होता था। 'दरखदार' वंशानुगत अधिकारी होते थे, जो परगनों (महालों) और जिलों में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे। वे सीधे पेशवा के अधीन होते थे और पूना के केन्द्रीय सरकार को ही अपनी सूचनां, और रिपोर्ट भेजते थे। इन दरखदारों के नाम–दीवान (उप मामलतदार), मजुमदार, फड़नीस, दफ्तरदार, पोतनिस, सभासद और चिटनिस थे। इनको मामलतदार सेवा मुक्त नहीं कर सकता था। इन दरखदारों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से अपनी स्वयं की स्वतन्त्रता एवं विवेकशीलता से कार्य करेंगे, वे एक दूसरे पर नियंत्रण ही नही रखेंगे, अपितु मामलतदार को भी उसके कार्यों और गतिविधियों को नियंत्रित करेंगे। वे उसकी अनियमितताओं को उसके चारित्रिक अवांछनीय कार्यों को भी प्रतिबन्धित करेगें। मामलतदार द्वारा पूना के 'हुजूर–ए–दफ्तर' को प्रेषित हिसाब–किताब तब तक पारित और मान्य नही होता था जब तक कि ये वंशानुगत दरखदार अपनी ओर से हिसाब–किताब नही भेज देते। यदि मामलतदार के क्षेत्र में भूमि सम्बन्धी कोई विवाद होता था, तब उस क्षेत्र का देशमुख अपना प्राचीन रिकार्ड जिसमें सभी 'वतन', 'इनाम' और अनुदानों में दी हुई भूमि का विवरण होता था, तथा सम्पत्ति के हस्तांतरण का लेखा–जोखा भी प्रस्तुत करता था। उसके आधार पर विवादग्रस्त भूमि का निराकरण किया जाता था।[17] कमविसदार परगने या महाल का प्रमुख अधिकारी होता था और सीधे पेशवा के अधीन और पूना सरकार के नियंत्रण में होता था। अपने क्षेत्र में कमविसदार राजस्व, सुरक्षा, शांति व्यवस्था, कृषि, उद्योग–धन्धे तथा धार्मिक और सामाजिक प्रश्नों के निराकरण के लिए उत्तरदायी था। वह पटेल के परामर्श से प्रत्येक ग्राम का भू–राजस्व निधार्रित करता था, ग्रामीण अधिकारियों के विरूद्ध शिकायते सुनाता और निर्णय देता था। उसके क्षेत्र में राजस्व वसूली का